पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी के मौलिक, दार्शनिक व शैक्षिक विचार

डॉ0 दीपक कुमार तोमर

(PDF) इतिहास विभाग
चौ0 चरण सिंह विश्वविद्यालय, कैम्पस मेरठ

सारांश

प्राचीन परम्परा के अनुसार गुरू शिष्य सम्बन्धों को चिरस्थायी बनाने के लिए शैक्षिक जगत् के लिए हित चिन्तक ''अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद'' नाम संगठन का निर्माण किया। विद्यार्थी परिषद् आज भी शैक्षिक वातावरण को स्वच्छ बनाने के लिए शैक्षिक परिवार की परिकल्पना को साकार करने में सतत् प्रयत्नशील है। पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी की यही परिकल्पना थी कि ''विद्यार्थी परिषद'' के माध्यम से यदि आज के छात्र और शिक्षक प्राचीन परम्परा की भांति गुरू और शिष्य के आध्यात्मिक सम्बन्धों को मधुर बनायेंगे तो निश्चित ही यह समाज पुनः उन्हें ''आचार्य देवोभव'' कहकर नतमस्तक हो जायेगा। शिक्षा पुनः अपने खोये हुए गौरव को प्राप्त करेगी, भारत पुनः जगत गुरू के सर्वोच्च पद पर पदासीन होगा।

मूल शब्द

सार्वभौमिक उद्देश्य, तटस्थता, सच्चरित्रता, मातृभाषा

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैः

डॉ० दीपक कुमार तोमर

पं० दीनदयाल उपाध्याय जी के मौलिक, दार्शनिक व शैक्षिक विचार

शोध मंथन, मार्च 2018,
पेज सं0 46–56

Article No. 7
http://anubooks.com
?page_id=581

प्रस्तावना

पण्डित दीनदयाल जी चाहते थे कि समाज को ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे उनके अन्दर संगठन और त्याग की भावना जाग्रत हो सके और राष्ट्र को गुलामी के बन्धनों से मुक्त कराया जा सके– ''जिस समाज और धर्म की रक्षा के लिए राम ने वनवास सहा, कृष्ण ने अनेकों कष्ट उठाये, राणा प्रताप जंगल–जंगल मारे फिरे, शिवाजी ने सर्वस्व अर्पण कर दिया, गुरू गोविन्द सिंह के छोटे–छोटे बच्चे जीते जी किले की दीवारों में चुन गये क्या उसकी खातिर हम अपनी जीवन की झूठी आकांक्षाओं का त्याग नहीं कर सकते?

पिछले बारह सौ वर्षों के गुलामी के इतिहास से पण्डित जी पूरी तरह परिचित थे। वे जानते थे कि ''समाज में जब तक अपने 'स्वत्व' का अभिमान जाग्रत रहा उसके कारण भूमि धर्म संस्कृति तथा राष्ट्र की एकात्मता की भावना विद्यमान रही। तब तक इस समाज की ओर आंख उठाकर देखने का भी साहस किसी को नहीं हुआ। परन्तु एकात्म जीवन का विस्मरण होते ही छोटे–छोटे अनेक स्वार्थ टकराने लगे। सत्ता लोभ में राज्य आपस में लड़ने लगे। इससे निर्बलता आयी और गुलामी सहित अनेक प्रकार की दुर्दशा इस समाज को भोगनी पड़ी। उपरोक्त ऐतिहासिक तथ्य से पूर्णतया भिज्ञ पण्डित दीनदयाल जी समाज को ऐसी शिक्षा देना चाहते थे कि सम्पूर्ण समाज एकता के सूत्र में बंध जाय और स्वराज्य प्राप्ति हेतु संघर्ष के लिए तैयार हो सके। स्वतन्त्रता के कुछ ही दिनों पूर्व लिखे गये 'चन्द्रगुप्त' (1946) नामक उपन्यास में पण्डित जी ने अपने उद्देश्यों को पूर्णतया स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

उपाध्याय जी के शिक्षा उद्देश्य

जॉन डीवी ने कहा है कि– ''शिक्षा के अपने कोई उद्देश्य नहीं होते हैं फिर भी व्यक्ति या समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उनका निर्माण किया जाता है। वे या तो लोगों की उन्नति के लिए या समाज के आदर्शों की प्राप्ति के लिए या इन दोनों के लिए निश्चित किये जाते हैं।'' इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्यों के विभिन्न प्रयोजन होते हैं और इन्हीं प्रयोजनों के आधार पर उनका निर्माण किया जाता है।

1. सार्वभौमिक उद्देश्य
2. विशिष्ट उद्देश्य
3. वैयक्तिक उद्देश्य
4. सामाजिक उद्देश्य

''जब जीवन के उद्देश्यों का निर्धारण दर्शन द्वारा किया जाता है तब शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण भी उसी के द्वारा किया जाना स्वाभाविक है क्योंकि शिक्षा स्वयं जीवन है और जीवन शिक्षा है।'' जैसे कि जीवन के प्रति दृष्टिकोण का नाम दर्शन है। व्यक्ति इसी दृष्टिकोण के अनुसार अपना जीवन यापन करता है। अतः जीवन और दर्शन अभिन्न है। जीवन के दृष्टिकोण के अनुसार ही शिक्षा के उद्देश्यों का निर्माण किया जाता है। अतः जिसका जिस प्रकार का जीवन के प्रति दृष्टिकोण होगा उसके द्वारा निर्धारित किये गये शैक्षिक उद्देश्य भी उसी प्रकार के होगे। पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने शिक्षा के जो उद्देश्य निर्धारित किये है उनमें दनके दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती है। पण्डित जी राष्ट्र की सेवा के लिए आजीवन– व्रत करने वाले अप्रतिम कर्मयोगी थे।

डॉ० दीपक कुमार तोमर

गुलाम भारत में (सन् 1916 में0) जन्म लेने वाले पण्डित जी अपनी शिक्षा दीक्षा के उपरान्त राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्यों में जुट गये तथा 1942 में अपना पूरा जीवन संघ के लिए समर्पित करते हुए लखीमपुर जिले के जिला प्रचारक के नाते राष्ट्र की सेवा करने लगे। पण्डित दीनदयाल जी महान क्रान्तिकारी बालगंगाधर तिलक से काफी प्रभावित थे। अतः स्वाभाविक है वह भी मातृभूमि की दासता को नहीं देख सकते थे। लेकिन देश पराधीन क्यों हुआ? इसके बारे में उनकी स्पष्ट सोच थी कि भारत के निवासी आपस में असंगठित है। जिससे उन्हें गुलामी की यातनायें सहन करनी पड़ी। यह पीड़ा उन्हें निरन्तर कचौटती रहती थी। पण्डित जी मातृभूमि को दासता के बन्धनों से मुक्त कराना चाहते थे।

आज देश के वीरता है, शूरता है, अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए सब कुछ अर्पण करने की शक्ति है परन्तु यदि कमी है तो एक सूत्र की जो सबको एक साथ सूत्र में बांध सके। अखिल भारतीय एक छत्र सम्राट की आवश्यकता है। यदि यह नहीं हुआ तो भारत वर्ष के यवनों का आधिपत्य सदा के लिए हो जायेगा और यदि अलिक सुन्दर इस बार लौट भी गया तो फिर कोई और आक्रमण कर देगा।''

''सम्पत्ति में देश का साथ न देने वाला क्षमा किया जा सकता है परन्तु विपत्ति में शत्रु के साथ मिलकर देशद्रोह करने वाला तो दूर रहा देश का साथ न देकर चुप बैठने वाला भी क्षमा नहीं किया जा सकता।'' अपने उपन्यास 'चन्द्रगुप्त' में पण्डित जी ने उल्लेख किया है कि चाणक्य द्वारा एकता के सूत्र में बांधी गयी संगठित शक्ति से सिकन्दर की पराजय होती है। चन्द्रगुप्त भारत का एक छत्र सम्राट बनता है राष्ट्र समस्त वैभव से परिपूर्ण होता है। ''आज सम्पूर्ण भारत एक आवाज से बोलता है और एक इशारे पर काम करता इस एकता में कितनी शक्ति है।'' पण्डित जी की भी ऐसी आकांक्षा थी ऐसा ही था उनका उद्देश्य।''

''वृतं यत्नेत् संरक्षत् वित्तमायाति याति च
अक्षीणों वित्ततः क्षीणों, वृतस्तस्तु हतोहत :''

भारतीय संस्कृति के अनुसार चरित्र की रक्षा यत्नपूर्वक की जानी चाहिए। धन तो आता है और चला जाता है जिसका धन नष्ट हो जाता है उसका कुछ भी नष्ट नहीं होता लेकिन जिसका चरित्र नष्ट हो जाता है वह मरे हुये के समान हो जाता है। पाश्चात्य संस्कृति में भी सच्चरित्रता का समर्थन करते हुए कहा गया है कि शिक्षा के द्वारा मनुष्यों का चरित्र निर्माण किया जाना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द ने चारित्रिक विकास को ही शिक्षा का मुख्य कार्य स्वीकार किया है। उन्होंने कहा है– ''हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है जिससे चरित्र का निर्माण होता हैं, मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती हैं, बुद्धि का विकास होता है और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है।'''जो शिक्षा साधारण व्यक्ति को जीवन संग्राम में समर्थन नहीं बना सकती, जो मनुष्यों में चरित्रबल परहित भावना तथा सिंह के समान साहस नहीं ला सकती वह भी कोई शिक्षा है? जिस शिक्षा के द्वारा जीवन में अपने पैरों पर खड़ा हुआ जाता है वही शिक्षा है।''

गाँधी जी ने अपने एक भाषण में कहा था– ''मैं अनुभव करता हूँ और सारे जीवन में अनुभव किया है कि संसार के सभी देशों को केवल चरित्र की आवश्यकता है और चरित्र से कम किसी वस्तु की

आवश्यकता नहीं।'' चारित्रिक विकास पर जोर देते हुए भूतपूर्व राष्ट्रपति, डॉ0 राधाकृष्णन ने कहा है– ''चरित्र भाग्य है। चरित्र वह वस्तु हैं, जिस पर राष्ट्र के भाग्य का निर्माण होता है। तुच्छ चरित्र वाले मनुष्य श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते।'' स्वामी विवेकानन्द ने चरित्र को परिभाषित करते हुए कहा है कि– ''मनुष्य का चरित्र उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों का समूह हैं, उसके मन के समस्त झुकावों का योग है हमारा प्रत्येक कार्य हमारे शरीर की सभी गतिविधियाँ हमारा प्रत्येक विचार मन पर एक संस्कार छोड़ देता है, ये संस्कार ऊपरी दृष्टि से अस्पष्ट होते हुये भी अज्ञात रूप से भीतर ह भीतर कार्य करने में विशेष रूप से प्रबल होते है हमारी प्रत्येक क्रिया उन संस्कारों द्वारा नियमित होती है। मन के इन संस्कारों का समूह चरित्र है।''

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन दोनों शुद्ध और पवित्र होने चाहिए। हम यह मानते है कि ''चरित्र व्यक्ति की वह सम्पूर्ण आन्तरिक शक्ति तथा तेज है जो उसके सारे व्यक्तित्व को प्रकाशित किये रहता है। इसमें व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों ही क्षेत्र आ जाते है। अतः हम कह सकते है कि भारतीय दृष्टिकोण अधिक व्यापक है जबकि पाश्चात्य दृष्टिकोण संकुचित है। भारतीय संस्कृति के उपासक पण्डित दीनदयाल भी इसी मत से सहमत है। उन्होंने कहा है–

''सामूहिक जीवन के इन संस्कारों को मजबूत करना ही प्रगति का मार्ग है। प्रत्येक व्यक्ति 'मैं' और 'मेरा' विचार त्याग कर 'हम' और हमारा विचार करें। अन्यथा कई बार देखा जाता है कि व्यक्ति कहता है कि राष्ट्र के लिए जान हाजिर है और जीवन में सब कार्य व्यक्ति का विचार करना ही करता रहता है। इसमें न व्यक्ति का ही भला न समष्टि का वास्तव में समष्टि के लिए कार्य करना यानि धर्माचरण की भी शिक्षा होती है। उसमें भी संस्कार डालने होते है। इन संस्कारों को प्रदान करना ही राष्ट्र का संगठन करना है।''

पण्डित दीनदयाल जी 'व्यक्ति निर्माण' को अति आवश्यक मानते हुए कहते थे कि व्यक्ति को निरोध दीर्घजीवी हुष्ट पुष्ट आनन्दित, प्रसन्न, कार्यक्षम, चरित्रवान, यशस्वी होना जरूरी है क्योंकि वह जानते थे कि यदि वह व्यक्ति निकम्मा अस्वस्थ एवं चरित्रहीन होगा तो निश्चित ही समाज एवं राष्ट्र का पतन हो जायेगा। इसलिए व्यक्ति के गुण विकसित होने चाहिए। निकम्मा आलसी, दुश्चरित्र व्यक्ति समाज की क्या सेवा करेगा? हमारे यहाँ कहा गया है कि व्यक्ति के अन्दर–

''धृति रक्षमा दमोस्तेयं, शौचमिन्द्रिय निग्रहः
घी विद्या सत्यम क्रोधो दशकम् धर्म लक्षणम्''

''शिक्षा वह प्रणाली है वह प्रक्रिया है जिससे कोई समाज अपने सदस्यों को अपने अनुरूप ढालता है। इसलिए शिक्षा व्यक्ति और समिष्ट का सम्बन्ध जोड़ने वाला प्रमुख तत्व है। शिक्षा वह प्रक्रिया है जिससे समिष्ट आपने आपको पुनरूत्पादित करती है, अपने लिए योग्य नागरिक बनाती है और नागरिक शिक्षित होकर अपने समाज के लिए उपयोगी बनने की चेष्टा करता है तथा आवश्यकतानुसार उत्तम समाज का निर्माण भी करता है।'' पण्डित जी का कहना है कि– ''शिक्षा और संस्कार से ही समाज के जीवन मूल्य बनते और सुदृढ़ होते है।''

राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त ने कहा था–''शिक्षे तुम्हारा नाश हो जो नौकरी के हित बनी।''

अतः शिक्षा का अर्थ केवल रोजी–रोटी कमाना नहीं बल्कि श्रेष्ठ चरित्रवान व्यक्तियों का निर्माण होना चाहिए लेकिन वर्तमान समय में शिक्षा के विकास केसाथ चरित्र का ह्रास हो रहा है। इसका मतलब यह हुआ कि हमारी शिक्षा में कही न कही कोई कमी अवश्य है।पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने 'धर्म' को मानव का प्राण माना है। वह कहते थे– ''महत्ता किसी वस्तु की है तो वह 'धर्म' है यदि हमारा प्राण कही है तो वह धर्म में है धर्म गया कि प्राण गया। इसलिए जिसने धर्म छोड़ा वह राष्ट्र से च्युत हो गया। उसका सब कुछ चला गया।''

''राष्ट्रीय दृष्टि से हमें अपनी संस्कृति का विचार करना ही होगा क्योंकि हमारी अपनी प्रकृति है, स्वराज्य का स्वसंस्कृति से धनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। संस्कृति का विचार न रहा तो स्वराज्य की लड़ाई स्वार्थी और पदलोलुप लोगों की राजनीतिक लड़ाई मात्र रह जायेगी। स्वराज्य तभी साकार और सार्थक होगा जब वह अपनी संस्कृति की अभिव्यक्ति का साधन बन सकेगा।''

''भारतीय जनसंघ के पास एक स्पष्ट आर्थिक कार्यक्रम है परन्तु उसका स्थान हमारे सम्पूर्ण कार्यक्रम में उतना ही है जितना भारतीय संस्कृति में अर्थ का। पाश्चात्य संस्कृति भौतिकवादी होने के कारण अर्थ प्रधान है। हम भौतिकवाद और आध्यात्मवाद दोनों का समन्वय करना चाहते है।''

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने अपने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की कल्पना को साकार करने का प्रयास किया है। पं0 जी 'सनातनी धर्मी' होने के नाते प्राचीन से कटकर आधुनिक बनने की प्रवृत्ति को राष्ट्रीय जीवन के लिए अहितकर मानते थे। अतः भारतीय राष्ट्र जीवन के पुनः निर्माण की बेला में पाश्चात्य सम्पर्क प्रभाव के कारण–कटी हुयी नयी पीढ़ी को अपनी प्राचीन अवधारणाओं से सुसम्बद्ध करना चाहते थे। उनका कहना था कि हमारी जीवन पद्धति हमारा मार्गदर्शन करने के लिए विद्यमान है। यह सही है कि हम हजारों वर्षों के इतिहास को जैसा का वैसा लेकर नहीं बढ़ सकते तथापि हमारी जीवन पद्धति के जो मूल तत्व है उन्हें भूलाकर हम नहीं चल सकते। हमें उन्हें युगानुकूल बनाकर ग्रहण करना होगा। नूतन सूझ–बूझ और पुरातन गुण–गरिमा का मणिकांचन संयोग उपस्थित करके चलना होगा। आधुनिक कार्य योजना और पुरातन संदर्भ शिक्षा लेकर नव निर्माण के चरण को विकास होने लगे।

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय अपने जीवन काल में चल रहे भाषा विवाद में सक्रियता पूर्वक शामिल रहकर हमेशा अपने तर्कपूर्ण ढंग प्रस्तुत करते रहे है। उनका कहना था कि मुस्लिम आक्रमणों के सम्पर्क से उत्पन्न एवं अंग्रेजों के कारण आरोपित अंग्रेजी राष्ट्रीय स्वाभिमान को आहत करने वाली भाषायें है। पं0 जी भाषा को राजनीति का मुद्दा नहीं बनने देना चाहते थे। उनका मानना था कि भाषा को राजनीति का मुद्दा बना देने से हिन्दी के विकास में बाधा उत्पन्न हुयी है। उपाध्याय जी ने कहा भी है कि ''राजनीतिज्ञ भाषा के नाम पर लड़ सकते है पर भाषा का सृजन नहीं कर सकते। '' ''अंग्रेजी के माध्यम से पश्चिम की नकल करके हम विश्व को जो कुछ दे सकते है उससे कई गुना अधिक मूल्यवान योगदान हम अपनी भाषाओं के द्वारा दे सकते है। ''

''स्वतन्त्र भारत में अंग्रेजी राजभाषा बनी रहे ऐसा दीनदयाल जी को कदापि स्वीकार्य नहीं था उनका मानना था कि जिस प्रकार अंग्रेजी राज्य का स्थान स्वराज्य ने ले लिया है उसी प्रकार अंग्रेजी भाषा का यह स्थान स्वाभाविक रूप से हिन्दी को मिलना चाहिए। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दी

के माध्यम से ही राष्ट्र का तेजस्वितापूर्ण आह्वान किया। गाँधी जी ने अंग्रेजी के विरूद्ध शांतिपूर्ण विद्रोह के निमित्त सनन्द्ध कर जनता को उत्साहित करने के लिए हिन्दी को ही उचित माध्यम माना।'' आदि काल से भारतीय संस्कृति का दृष्टिकोण अत्यन्त उदार रहा है। सम्पूर्ण पृथ्वी के लोगों को ''कुटुम्ब'' अर्थात् ''परिवार'' मानने की भावना का उद्घोष भारतीय संस्कृति ने ही किया है–

''अयं निजः परोवेतिगणनालघु चेतसाम्।
उदार चरितानां तु वसधैव कुटुम्बकम्।''

भारतीय संस्कृति में अद्वैत भावना पर विशेष बल दिया गया है। गीता में भगवान कृष्ण ने इस अद्वैत भावना को और अधिक बलवती बनाया है ''आत्माह सर्वभूतेषु अद्वैत हमें प्रत्यक्ष व्यवहार की शिक्षा देता है। जिन बातों से हमें दुःख होता है उन्हें हम दूसरों के प्रति न करें।

''आत्मान प्रतिकूलानि
पेरसां न समाचरेत्''

भारतीय संस्कृति के प्रवक्ता उदारमना पं0 दीनदयाल उपाध्याय भी मानवता के पुजारी उच्चकोटि के विद्वान, लोक कल्याण के उपासक एवं मानवीय गुणों से सम्पन्न स्वामी विवेकानन्द जैसे महामानवों के पदचिन्हों पर चलने वाले भारत भक्त थे। उनका मानना था कि ''कृषवन्तो विश्वमार्यम'' का जयघोष करने वाला जगद्गुरू भारत वर्ष विश्व कल्याण या विश्वशान्ति स्थापित की जा सकती है। पं0 उपाध्याय जी सम्पूर्ण विश्व की समस्याओं को सुलझाकर मानव कल्याण की स्थापना में भारत वर्ष के सक्रिय सहयोग के आकांक्षी थे। पं0 जी की राष्ट्र भावना संकीर्ण नहीं थी। उनकी राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता के मार्ग की बाधक नहीं वरन् पोषक थी।

''हमने व्यक्ति के जीवन का पूर्णता के साथ संकलित विचार किया है उसके शरीर मन बुद्धि और आत्मा सभी का विकास करने का उद्देश्य रखा है। इस हेतु चारों पुरूषार्थों का संकलित विचार हुआ है।''

अतः शारीरिक मानसिक, बौद्धिक आत्मिक एवं अध्यात्मिक क्रियाओं के साथ–साथ परोपकार की भावना उत्पन्न करने वाली क्रियाओं को पाठ्यक्रम में रखा जाना चाहिए। पण्डित दीनदयाल जी साम्प्रदायिकता विहीन धार्मिक भावना को जागृत करने वाले पाठ्यक्रम के पक्षधर हैं। ''चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के लिए एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया पर स्वयं निस्पृह कर्मयोगी की भांति राज्य से निराशक्त रहे। आज हमारे राजनीतिक जीवन में जो विकृतियाँ दिखाई दे रही है। वह आसक्ति के कारण दिखाई दे रही हैं।''

भारत का यदि कोई इतिहास है तो वह समस्त विश्व की मंगल कामना का ही है। विश्व के विभिन्न देशों में प्राप्त भारतीय इतिहास के अवशेष आज भी इसी तथ्य की घोषणा कर रहे है कि भारत ने प्राणि मात्र के कल्याण के लिए ही प्रयत्न किये हैं। इसलिए सत्य तो यह है कि विश्व के परस्पर संघर्ष, विद्वेष प्रतिद्वन्दिता के आधार पर प्रगट हो रही पश्चिमी राष्ट्रवाद की विभीषिकाओं से विश्व को बचाना है तो उसके लिए भारत के सशक्त राष्ट्रवाद को ही संगठित और सक्षम बनाकर खड़ा करना होगा।

''हजारों मस्तक, हजारों बाहु हजारों नेत्र, हजारों उदर, हजारों जाघें, बाजारों पैरों वाला एक पुरूष पृथ्वी पर फैला हुआ है ज्ञानी मनुष्य इसके मुख हैं शूरवीर बाहु है, किसान और व्यापारी इसके उदर

तथा जांघे है कारीगर इसके पैर हैं। ज्ञानी, शूर व्यापारी और शिल्पी मिलकर एक देह है। एक देह में जिस प्रकार एकात्मता होती है वैसी एकात्मता इस जनता रूपी पुरूष में होनी चाहिए।'' इस प्रकार सामन्जस्यपूर्ण एकात्म व्यवस्था का पुनः निर्माण करने के लिए प्राचीन वर्ण व्यवस्था के महत्व को आवश्यक सुधारों के साथ स्वीकारना होगा और शिक्षा के पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान देना होगा।

व्यायाम तथा शिक्षा–शिक्षा का अर्थ ही हैं– मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास। अर्थात् मनुष्य का बौद्धिक, आत्मिक आध्यात्मिक, नैतिक, चारित्रिक एवं शारीरिक विकास। जिसे हम एक पक्षीय या एकांगी विकास न कहकर मनुष्य का सर्वांगीण विकास एवं संतुलित विकास कहते हैं। जिसमें शरीर का विकास सम्मिलित है।

प्लेटो के अनुसार–शिक्षा द्वारा हमें शरीर आत्मा की पूर्णता के लिए सब कुछ प्राप्त हो सकेगा अगर हममें उसे ग्रहण करने की क्षमता हो।''

राधाकृष्णन के अनुसार–''शिक्षा सम्पूर्ण मानव का विकास है।'' महात्मा गाँधी शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य मानव जीवन का सर्वतोन्मुखी विकास मानते थे। शिक्षा से उनका तात्पर्य है–

''शिशु एवं मानव के शरीर मन एवं आत्मा में निहित सर्वश्रेष्ठ तत्वों का विकास'' उनका कहना है कि– ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय है बालक और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में पाये जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का चतुर्मुखी विकास।'' इस प्रकार हम कह सकते है कि शारीरिक विकास शिक्षा का विशिष्ट उद्देश्य है।

वनस्थली विद्यापीठ राजस्थान में बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए पंचमुखी शिक्षा योजना का निर्माण किया गया। शारीरिक, व्यवहारिक, ललितकला विषयक, नैतिक और बौद्धिक, अतः 'व्यायाम' की दृष्टि से शारीरिक शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वहाँ पर विभिन्न प्रकार की ड्रिलों, लाठी, लेजिम, गदका, डम्बल तलवार, भाला, सैनिक कवायद, आधुनिक और पुराने खेल, कबड़डी बालीबाल खो–खो, हॉकी, बास्केट बाल, बैडमिण्टन, थ्रो बाल, साईकिल सवारी घुड़सवारी तथा तैराकी की शिक्षा दी जाती है। यौगिक आसनों को सिखाने का भी प्रबन्ध है।

पण्डित दीनदयाल जी उपाध्याय 'व्यायाम' को शिक्षा का अंग बनाये जाने के पक्षधर हैं। उनका कहना है कि– ''व्यक्ति भाव जिसमें व्यक्ति का व्यक्तित्व ढलता है आवश्यक ही होता है। 'व्यायाम' से शरीर बलशाली होता है। संध्या उपासना करने से अन्तःकरण को शान्ति मिलती है दीर्घायु प्राप्त होती है। व्यक्ति भाव से व्यक्तिशः सेवा सुश्रुषा करने से ही यह सब हो पाता है। व्यक्ति को निरोग, दीर्घजीवी, हष्टपुष्ट आनन्दित, प्रसन्न कार्यक्षम यशस्वी होना जरूरी है। जहाँ व्यक्ति निर्बल होकर निकम्मा हो जाता है वहाँ समष्टि की आराधना का पूरा लोप होना स्वाभाविक ही है।''

पं0 दीनदयाल जी ने कहा है–''इस दृष्टि से हमें अनेक रूढ़ियाँ समाप्त करनी होगी, बहुत से सुधार करने होंगे, जो हमारे 'मानव' का विकास और राष्ट्र की एकात्मना की वृद्धि में पोषक हों वह हम करेंगे और जो बाधक हो उसे हटायेंगे। आज यदि समाज में छुआ–छूत और भेद भाव घर कर गये हैं जिसके कारण लोग मानव को मानव समझ कर नहीं चलते और जो राष्ट्र की एकता के लिए घातक सिद्ध हो रहे है हम उनको समाप्त करेंगे।''

पं0 दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के स्वयं सेवक थे और संघ में सरल संगीत और गीतों के माध्यम से किशोरों के हृदयों में राष्ट्रीयता और एकात्मता की सहज भावना विकसित की जाती

है। जब कभी पथ संचालन केकार्यक्रम आयोजित होते है, स्वयं सेवक बैण्ड की धुन के साथ–साथ कदम ताल करते हुए संचलन गीत दुहराते हुए आगे बढ़ते हैं–

''मातृ भूमि गान से गूँजता रहे गगन,
स्नेह नीर से सदा फूलते रहे सुमन,
जन्म सिद्ध भावना स्वदेश का विचार हो,
रोमरोम में श्या स्वधर्म संस्कार हों
आरती उतारते प्राण दीप हो मगन
स्नेह नीर से सदा .....''

शिक्षण पद्धति

शिक्षण की प्रक्रिया में तीन कारक निहित रहते है प्रथम बालक, जो इस प्रक्रिया का आधार बिन्दु है, द्वितीय विषय वस्तु जो उसे सीखनी है और तीसरा है शिक्षण जो सीखने में सहायता प्रदान करता है। अर्थात् सीखना और सिखाना ही शिक्षण पद्धति है। शिक्षण पद्धति को हम शिक्षण संस्कार भी कह सकते है जिसके द्वारा अनुभवी व्यक्ति अर्थात् शिक्षक अपने विद्यार्थी को अभीष्ठ ज्ञान एवं अर्जित अनुभवों से दीक्षित करता है।

प्राचीनकाल से ही शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षण पद्धतियों का प्रयोग होता रहा है। श्रवण मनन तथा निदिध्यासन इन तीन प्रक्रियाओं का शिक्षण कार्य में महत्वपूर्ण स्थान था–

''श्रवणं तु गुरोः पूर्व मननं तदनन्तरम्।
निदिध्यासन मित्येतत्पूर्ण बोध्स्य कारणम्।।''

जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति कुछ न कुछ सीखता ही रहता है अर्थात् सीखना मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सीखना ही प्रमुख अध्ययन विषय है, सीखना ही शिक्षा है।

मातृभाषा शिक्षण विधि

पं0 दीनदयाल उपाध्याय क्रियाशील शिक्षण पद्धति के समर्थक थे। उनका मानना था कि बालक को ऐसी विधि के द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे किवह कर्मठ और क्रियाशील बनकर कमाने के योग्य हो जाये और सुखी जीवन व्यतीत कर सके। देश के आर्थिक ढाँचे के निर्माण में मनुष्य को क्रियाशील बनाने का प्रयत्न उपाध्याय जी की शिक्षण पद्धति में हमें देखने को मिलता है।इस प्रकार व्यक्ति को निद्रालु, आलसी एवं क्रियाहीन बनाने वाली शिक्षा तथा शिक्षण व्यवस्था और संस्थाओं को बदलने का सुझाव देते हुए पं0 दीनदयाल ने कहा है– ''हमें उन संस्थाओं का निर्माण करना होगा जो हमारे अन्दर कर्मचेतना पैदा करें।''

वैज्ञानिक विधि–वर्तमान युग विज्ञान के युग के नाम से जाना जाता है। मानव एवं प्रकृति की प्रत्येक क्रिया को वैज्ञानिक दृष्टि से देखने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार विज्ञान की नयी–नयी खोजों ने प्राचीन मान्यताओं को बदल डाला है। मानव जीवन का प्रत्येक क्षेत्र विज्ञान से प्रभावित भी वैज्ञानिक आधार पर की जाने लगी है। तब शिक्षा विज्ञान के प्रभाव से प्रभावित रहे बिना कैसे रह सकती है? आज शैक्षिक उद्देश्यों पाठ्यचर्या एवं शिक्षण विधियों के निर्माण में विज्ञान का सहयोग–अपरिहार्य

हो गया है। नये–नये नियमों एवं सिद्धान्तों के प्रतिपादन का सहयोग लेना पड़ता है। समय की मांग के अनुसार देश के उज्जवल भविष्य का निर्माण की दृष्टि से पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने भी अपनी शिक्षण पद्धति में वैज्ञानिक विधि को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने विविधता में निहित एकता की शिक्षा देने के लिए तथा एकता का विविध रूपों के व्यक्तिकरण करने के लिए वैज्ञानिक विधि को अपनाया है जैसे–''हम यह तो स्वीकार करते हैं कि जीवन में अनेकता अथवा विविधता है किन्तु उसके मूल में निहित एकता की खोज निकालने का हमने सदैव प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न पूर्णतः वैज्ञानिक है।''

स्वसध्याय एवं व्याख्यान विधि

स्वाध्याय एवं व्याख्यान विधि शिक्षण की अति प्राचीन विधियाँ है। प्राचीन काल से प्रचलित उपरोक्त दोनों विधियाँ शिक्षण की दृष्टि से आज भी उतनी ही उपयुक्त एवं अपरिहार्य है जितनी की प्राचीन काल में थी।

'आत्मदीपो भव' कहकर प्राचीनकाल में 'स्वाध्याय' के लिए शिक्षार्थियों को प्रोत्साहित किया जाता था। स्वाध्याय अर्थात स्वयं के अध्ययन से प्राप्त ज्ञान रूपी दीपक के द्वारा स्वयं को प्रकाशित करना शिक्षा का उद्देश्य माना जाता था। आज भी शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए 'स्वाध्याय' का महत्वपूर्ण स्थान है। सरस्वती विद्या मन्दिरों की अभिनव पच्चपदी शिक्षण पद्धति में 'स्वाध्याय' को अन्तिम पच्चम पद अर्थात् अत्यन्त महत्वपूर्ण पद के रूप में स्वीकार किया गया है।

1. अधीति 2. बोध 3. अभ्यास 4. प्रयोग 5. प्रसार

वर्तमान समय में व्याख्यान विधि का सबसे अधिक प्रयोग किया जाता है। विशेषकर उच्च शिक्षा में धर्म, दर्शन राजनीति, अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र और शिक्षा शास्त्र जैसे विषयों के अध्यापन में अभी शिक्षक इसी विधि का प्रयोग करते है। उनके पद को भी 'लेक्चरर' अर्थात् 'व्याख्यात' ही कहा जाता है। पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी का अधिकांश चिन्तन तो उनके 'व्याख्यानों' का ही संकलन है। अपने चिन्तन दर्शन के प्रसार के लिए उन्होंने 'व्याख्यान विधि का सर्वाधिक प्रयोग किया है। सच्चे अर्थों में वह तो हिन्दु राष्ट्र के 'व्याख्याता' ही थे।

दृश्य श्रव्य साधनों का प्रयोग

दृश्य श्रव्य शिक्षण विधि के द्वारा बालक की कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों का दृश्य श्रव्य शिक्षण विधि द्वारा बालक को ज्ञान प्राप्त करना सुगम हो जाता है तथा ऐसा ज्ञान शीघ्र विस्मृत नहीं होता वरन् स्थाई रहता है। इसके माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने में बालक को अरूचि पैदा नहीं होती है। अन्य विधियों की तरह दृश्य श्रव्य विधि भी प्राचीन काल से प्रयुक्त होने वाली शिक्षण विधि है।

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने भी दृश्य श्रव्य साधनों के प्रयोग को प्राचीन काल से चली आने वाली शिक्षण पद्धति के रूप में स्वीकार किया है। दृश्य श्रव्य साधनों को शिक्षण के सशक्त माध्यम के रूप में स्वीकार करते हुए पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने कहा है– ''प्राचीनकाल के कथा और कीर्तन तथा आज के रेडियो सिनेमा समाचार पत्र आदि सभी इस सीमा में आते हैं।''

छात्र एवं अध्यापक–प्राचीन काल में हमारे यहाँ गुरू को आध्यात्मिक पिता तथा शिष्य को आध्यात्मिक पुत्र माना जाता था। अतः गुरू और शिष्य का सम्बन्ध पिता और पुत्र की तरह ही होता था। आचार्य या

गुरू अपनी विद्या कौशल, प्रेम और सहानुभूति के द्वारा विद्यार्थी के जीवन का निर्माण करता था। उस समय शिक्षण कार्य पूर्णतः निशुल्क था। गुरू को शिष्य से किसी भी प्रकार के आर्थिक लाभ की अपेक्षा नहीं रहती थी। हमारे यहाँ के ऋषियों मुनियों, तपस्वियों एवं आचार्यों ने राजकाज तथा उद्योगों और व्यवसायों के माध्यम से जीविकोपार्जन के काम को दूसरों के लिए छोड़ रखा था स्वयं सम्पूर्ण जीवन केवल ज्ञान दान के कार्य में और वह भी बिना मूल्य होम करने का व्रत स्वीकार किया था।

''यस्याभगः केवल जीविकायै,
ते ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति।''

अर्थात् जो अपनी विद्या का उपयोग केवल पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिए करता है, वह व्यक्ति ब्राह्मण न होकर ज्ञान की दुकान लगाने वाला बनिया है। वर्तमान शैक्षिक जगत इतना दूषित हो गया है कि गोस्वामी तुलसीदास द्वारा कही गयी बात पूर्णतया चरितार्थ हो रही है।

गुरू शिष्य बधिर अन्धका लेखा।
एक न सुनहिं एक न देखा।।''

सन्दर्भ

- *''शिक्षा के उद्देश्यों का निर्माण और वर्गीकरण''* शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त, पाठक एवं त्यागी विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
- *''दर्शन और शिक्षा''*– विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, **पृ0 115**
- चन्द्रगुप्त संघर्ष का संकल्प– पं0 दीनदयाल उपाध्याय, **पृ0 40**
- चन्द्रगुप्त सशक्त भारत– पं0 दीनदयाल उपाध्याय, **पृ0 63**
- शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार **पृष्ठ–22** भाई योगेन्द्र जीत
- शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त– **पृष्ठ 27** भाई योगेन्द्र जीत
- शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार–पाठक एवं त्यागी, **पृ0 23**
- स्वामी विवेकानन्द– पंचमाध्याय
- राष्ट्र जीवन की दिशा– मैं और हम– दीनदयाल उपाध्याय, **पृ0 30**
- उत्तर प्रदेश सन्देश– डॉ0 मुरली मनोहर जोशी– पण्डित दीनदयाल व्यक्ति और विचार।
- एकात्म मानव दर्शन– राजय और धर्म, पं0 दीनदयाल उपाध्याय, **पृ0 43**
- एकात्म मानववाद संस्कृति का विचार करें, **पृ0 17**
- दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र चिन्तन अध्याय 13 विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था, राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ, **पृ0 89**
- राष्ट्र जीवन की दिशा आधुनिक प्रगति की दिशा सारांश पं0 जी **पृ0 191**
- राष्ट्रभाषा की समस्या– पं0 दीनदयाल उपाध्याय, **पृ0 31**
- पोलिटकल डायरी– पं0 दीनदयाल उपाध्याय स्वभाषा और सुभाषा, **पृ0 9**
- पोलिटकल डायरी– पं0 दीनदयाल उपाध्याय स्वभाषा और सुभाषा, **पृ0 89–90**
- एकात्म मानव दर्शन **पृ0 29**, एकात्ममानववाद पं0 दीनदयाल उपाध्याय
- राष्ट्र जीवन की दिशा, **पृ0 76–77**, राष्ट्र प्रकृति और विकृति पृ0 दीनदयाल उपाध्याय जी
- राष्ट्र जीवन की दिशा, **पृ0 108,** संगठन का आधार राष्ट्रवाद– पण्डित दीनदयाल उपाध्याय
- राष्ट्र जीवन की दिशा, पं0 दीनदयाल उपाध्याय, *'सामंजस्यपूर्ण वर्ण स्यवस्था,* **पृ0 134**

- विश्व के महान शिक्षा शास्त्री, डॉ0 वैद्यनाथ शर्मा, **पृ0 777**
- उपरोक्त 1 के अनुसार, **पृ0 777**
- महात्मा गाँधी, **पृ0 461**
- महात्मा गाँधी, **पृ0 461**
- *राष्ट्र जीवन की दिशा, मैं और हम*, पं0 दीनदयाल उपाध्याय, **पृ0 30**
- एकात्म मानव दर्शन उपसंहार राष्ट्र जीवन के अनुकूल अर्थरचना पं0 दीनदयाल उपाध्याय, **पृ0 74–75**
- *भारतीय शिक्षा के मूल तत्व, शिक्षण के सिद्धान्त एवं पद्धतियाँ,* लज्जाराम तोमर, सुरूचिप्रकाशन, केशवकुन्ज, झण्डेवालान, नई दिल्ली, **पृ0 145**
- चिन्तन शिक्षा, **पृ0 75**
- एकात्म मानव दर्शन, *एकात्म मानववाद,* पण्डित दीनदयाल उपाध्याय, **पृ0 18**